पेरिस
जनवरी २६, २००६

सन्देश संख्या १५७

'तुम' और 'समस्या', एक ही हो, दो नहीं

शिवेन्दु के पास आकर तुम यह सुनना नहीं चाहते कि तुम ही समस्या हो, इसे सुनकर भी यदि किसी के द्वारा बताया गया या स्वयं द्वारा सुझाया गया कोई उत्तर मन में नहीं आता हो तभी यह कथन समझ में आ सकता है, समस्या का समाधान हो सकता है किन्तु इसे समझने का प्रयास करना, वस्तुतः समस्या को बढ़ाना ही होगा, किन्तु शिवेन्दु बड़े आदरपूर्वक उपर्युक्त बात ही कहना चाहता है, क्योंकि वह तथाकथित सहानुभूति प्रकट करने वाला, किसी मनोचिकित्सक की तरह या किसी पुरोहित की तरह कोई व्यवसाय नहीं करता ।

''मैं'' की गहन समझदारी ही स्वाध्याय है, न कि सहानुभूतिपूर्वक ''मैं'' को बनाये रखना । सहानुभूति और सलाह प्रायः समस्या को बनाये रखने में ही सहायक होते हैं । ये समस्या के मूल और उसकी वास्तविकता तक पहुँचने में मदद नहीं करते । यह स्पष्टतः बताना कि – ''मैं'' ही समस्या है, न तो जीवन के प्रति नकारात्मक होना है और न ही क्रूर होना है । स्वध्याय से समझदारी घटित होती है और इसलिए यह भ्रान्ति ''मैं'' को प्रसन्न रखने के लिए चित्तवृत्ति की विभेदकारी प्रक्रियाओं को प्रोत्साहित नहीं करता है।

''मैं'' के द्रष्टा रहित दर्शन की प्रक्रिया जो कि 'स्वाध्याय–प्रक्रिया' है, से पलायन वस्तुतः भ्रम एवं भ्रान्ति में जीने का चयन करना है । सहानुभूति और दया के नाम पर भ्रांति ''मैं'' के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने की सलाह देने वाले वस्तुतः मिथ्या ''मैं'' की जटिलता को ही बढ़ाते हैं । ऐसा परामर्श 'बनने' की प्रक्रिया को बढ़ावा देता है जो 'होने' के परमानन्द अर्थात् जीवन की जीवन्तता को ढँक देता है ।

'होना' जहाँ सम्पत्ति है, वहीं 'बनना' विपत्ति है । ''मैं'' के प्रति सजगता, ''मैं'' का प्रोत्साहन या ''मैं'' की निन्दा नहीं है । क्षुद्र ''मैं'' के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने की पद्धति–'स्वाध्याय' नहीं है । यह ''मैं'' की प्रवंचना और उससे उत्पन्न पीड़ा, दुःख–दर्द, वैर–भाव आदि की पूर्ण समाप्ति है । स्वाध्याय अर्थात् सजगता ईमानदारी और कठोर परिश्रम है किन्तु ''मैं'' उधारी जानकारी के साथ सामञ्जस्य स्थापित कर अनेक प्रकार से सजगता को भंग करने में सक्षम है ।

जानकारी ''मैं'' को मजबूती प्रदान करती है, उसे संतु रखती है । यह 'विकास' और 'परिवर्तन के भ्रम को स्वीकार करती है । वस्तुतः तथाकथित विकास और परिवर्तन उसी ''मैं'' की परिमार्जित सततता के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता । जानकारी से क्रिया उत्पन्न नहीं होती बल्कि जड़ता उत्पन्न होती है ।

किसी ने विरोध व्यक्त करते हुए कहा था कि ''जानकारी के बिना हमलोग कुछ नहीं है'', तब उसे उत्तर दिया गया था–''तुम सचमुच कुछ नहीं हो...''। और उस 'कुछ नहीं होना' का बोध होना ही प्रज्ञा का प्रारम्भ है । जहाँ प्रज्ञा पूर्ण होती है, वहीं जीवन में शून्यता, समता, शान्ति और पवित्रता की ऊर्जा होती है । सतत् सजगता अन्ततः अहंकारी एवं धूर्त ''मैं'' जो सभी समस्याओं का जनक है, का विलय कर देती है । निर्द्वन्द्वता के पीछे कम नहीं होता बल्कि निर्द्वन्द्वता ही कम है ।

भावनाओं को शब्द देना या उनका नामकरण करना जैसे कि – ईर्ष्या, भय, इच्छा, विश्वास आदि समझदारी एवं सजगता लाने में सहायक नहीं होते । ऐसे शब्दों में या तो निन्दा–भाव होता है या औचित्य–भाव । वस्तुतः शाब्दिक अभिव्यक्ति की प्रक्रिया ''मैं'' का ही हिस्सा है और इसीलिए उसमें सत्यता और समझदारी नहीं होती । जब कोई नाम नहीं होता तभी 'अहंभाव' का विलय और 'अस्तित्व' का उदय होता है ।

'सर्वमेव परित्यस्य महामौनि भवानघ''

अथार्त् दर्शक रहित दर्शन और निर्विचार मौन को उपलब्ध होओ ।

जब मिथ्या ''मैं'' की समझ नहीं हो, और उसकी व्याख्या को सान्त्वना के रूप में समझा जाए तथा जब शब्दों का प्रभाव वास्तविक वस्तुओं जैसा हो और ''मैं'' की समस्याओं का समाधान विचारों द्वारा किया जाय – तब ये सभी सजगता की हत्या करने वाले हैं और ''मैं'' को सतत् बनाये रखने में मदद करने वाले हैं । चित्तवृत्ति के मिथ्या विभाजनों से परे जाना अर्थात् अविभाजित सजगता को उपलब्ध होना ही मानवता की सबसे गहन प्रज्ञा है ।

''अविभक्तं विभक्तेसु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विषकम्''

।। अनाम की जय ।।